ISSN: 2394-3122 (Online)
ISSN: 2394-6253 (Print)
Impact Factor: 5.045

Volume 5, Issue 12, December 2018

SK International Journal of Multidisciplinary Research Hub

Journal for all Subjects

e-ISJN: A4372-3088

p-ISJN: A4372-3089

Research Article / Survey Paper / Case Study

Published By: SK Publisher (www.skijmr.com)

मध्यकालीन राजस्थान में राज्य के निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं का एक ऐतिहासिक विश्लेषण

सुदेश कुमारी

शोधार्थी, इतिहास विभाग,

दिल्ली विश्वविद्यालय।

शोध–सार: *मध्यकालीन राजस्थान के राज्य के निर्माण के अध्ययन को परम्परागत इतिहास लेखन में वंश विशेष के प्रमुख शांसको के कार्य और सफलताओं के संदर्भ में देखा जाता है, परन्तु राज्य निर्माण एक प्रक्रिया के रुप में सम्पन्न होती है तथा राज्य निर्माण अनेकों अवस्थाओं से पूर्ण होती है। यदपि राजस्थान में अलग–अलग क्षेत्रों में समय–समय पर राज्य निर्माण हुआ परन्तु हमें सामान्य अवस्थाओं की पहचान होती है।*

परिभाषित शब्दार्थ: *ख्यात, बीका, भाई बाट, बही, करणी, टाड।*

मध्यकालीन राजस्थान में राज्य निर्माण

किसी भी क्षेत्रीय भूभाग में 'राज्य निर्माण' उस क्षेत्र विशेष को बढ़ते सामाजिक विभेदीकरण, पर्याप्त संसाधनों की वृद्धि, शासक वर्ग का गठन एवं उचित प्रशासन का ही परिणाम नहीं होता है अपितु एक उभरती विशेष संप्रभुता के उदय का परिणाम भी होता है जो उस क्षेत्र विशेष की अस्मिता को अपने में समाहित किये होता है। यह किसी राज्य निर्माण से सुदृढीकरण रूप को प्रस्तुत करता है।[1] भारतीय इतिहास लेखन में भारत में राज्य निर्माण को समझने के लिये सिद्धान्तों का अभाव रहा है जो समय विशेष में, एक क्षेत्र विशेष में राज्य निर्माण को एक प्रक्रिया के रूप में दिखा सके।

मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास लेखन का आरम्भ एक क्षेत्रीय इतिहास की परंपरा के रूप में हुआ जब उपनिवेशी विचार से ओतप्रोत होकर कर्नल जैम्स टाड द्वारा अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अनाल्स एण्ड एन्टीक्यूटी' आफ राजस्थान लिखा गया।

यह दो भागों में मध्यकालीन राजस्थान के राज्यों का एक विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह प्रयास रियासतों के उपलब्ध दस्तावेजों, चारणभाटों, बहियों, वंशावलियों इत्यादि के आधार पर किया गया। कर्नल टाड ने मध्यकालीन राजपूती राज्यों के विश्लेषण में राजपूती संस्कृति, वंशावली, शौर्यता, वीरता की छवि को नई ऊँचाई प्रदान की तथा एक शासक वर्ग, राज्यों के निर्माताओं के रूप में राजपूतों को मध्यकालीन भारत के इतिहास में अति महत्वपूर्ण बना दिया।

कर्नल टाड वास्तव में उपनिवेशीवाद सोच के अन्तर्गत ब्रिटिश शासन से पूर्व राजपूती रियासतों में क्षेत्रीयवाद की भावना की पुनः स्थापना करना चाहता था। उन्होंने वास्तव में राजपूती क्षेत्रीयवाद की अस्मिता का जो बढ़ा–चढ़ाकर वर्णन किया वो पनपते राष्ट्रवाद की एकता की भावना को क्षेत्रीयवाद की भावना के द्वारा बाधित करने का प्रयास अधिक था। कर्नल टाड वास्तव में उपनिवेशवादी शासन के औचित्य के सन्दर्भ में राजपूती इतिहास को प्रभावशाली क्षेत्रीयवाद के हथियार के रूप में दिखा रहे थे। फिर भी उनके प्रयासों से मध्यकालीन भारत में राजपूतों को महत्वपूर्ण शासकों, राज्यों के संस्थापकों के रूप में महत्वपूर्ण बना दिया जिससे मध्यकालीन राजनीति में राजपूती राज्यों के इतिहास को जानने, अधिक से अधिक शोध सामग्री संग्रह कर शोध करने की परम्परा को बढ़ावा मिला। तत्पश्चात् राजस्थान के इन राज्यों में अपने–अपने स्तर पर अपने–अपने राज्य के उत्थान, निर्माण, विस्तार, स्थायीत्व आदि सम्बन्धित अध्ययन सामग्री जुटाने में गम्भीर प्रयास अनेक स्तरों पर होने लगे। अनेक राजपूती रियासतों में वंश/कुल से जुड़ी शोध सामग्री एवं दस्तावेजों को इकट्ठा कर एक स्थान पर अभिलेखागारों की स्थापना हुई तो दूसरी ओर अनेक शोध संस्थाओं एवं व्यक्तिगत स्तर के पुस्तकालय उभरे[2] जो मध्यकालीन राज्यों, शासकों के इतिहास लेखन से जुड़े थे।

वास्तव में कर्नल टाड द्वारा जो इतिहास लिखा गया वह 18वीं शताब्दी के विशेष सन्दर्भ की पृष्टभूमि से जुड़ा था जब मुगलों के सिकुड़ने, मराठों का आक्रमणों के प्रहार से तथा आपसी सम्बंध से राजपूतों के समाज, संस्कृति, धर्म पर संकट के बादल उमड पड़े थे तथा चारण भाटों ने पुनः राजपूती अस्मिता को बचाये रखने के लिए राजपूती शौर्यता, वीरता की छवि को एकागार ढाल के रूप में व्यक्त किया। ऐसी विकट परिस्थितियों में प्रत्येक राजपूती रियासतों द्वारा वैचारिकता के रूप में पूर्व शासक के कार्यों/चरित्र को चारण भाट परम्पराओं ने बड़े रूप में उकेरना आरम्भ किया, इसी सामग्री का सामना कर्नल टाड से हुआ। इस सामग्री से कर्नल टाड द्वारा उन्हीं अंशों को चुना गया जो उसकी वैचारिकता को पुष्ट करते थे।

राजपूती राजनैतिक इतिहास लेखन की अगली अवस्था महोपाध्याय रायबहादुर गौरी शंकर हीराचन्द ओझा के नेतृत्व में हुई। उन्होंने कर्नल टाड के इतिहास की गलतियों को दूर करते हुये, तथा अधिक उपलब्ध स्रोत सामग्री, वंशावली, ख्यातें, पदावली आदि सभी का प्रयोग कर प्रमुख राजपूती रियासतों के अधिक तर्कपूर्ण, क्रमबद्ध इतिहास को लिखा जिसमें राजपूती शासकों के कार्यों, उपलब्धयों को राज्य निर्माण के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जिसमें सोलंकियों, सिरोही, उदयपुर, डुंगरपुर,

© 2018, SKIJMR All Rights Reserved

बासवाडा, बीकानेर, जोधपुर, आदि सभी का इतिहास था। इसके बाद इन्होंने ख्यात रचनाओं का सम्पादन किया।[3]

गौरी शंकर ओझा ने वंशीय इतिहास की परम्परा से हटकर शुद्ध राजनैतिक इतिहास लिखने का प्रयास किया तथा सभी स्रोतों की जांच पडताल कर सामग्री को अधिक तर्क पूर्णता से प्रस्तुत किया। गौरी शंकर ओझा को राजस्थान का महानतम इतिहासकार माना जाता है। गौरी शंकर ओझा ने स्थानीय स्रोतों की खोजबीन कर अनेक अधूरी घटनाओं को पूर्ण करने का प्रयास किया। विश्लेषणात्मक इतिहास पद्धति के बावजूद ओझा का इतिहास घटनापरक तथा शासकपरक अधिक ठहरता है जिसमें राष्ट्रवाद के अतिवादी वैचारिकता से राजपूती छवि को उत्कर्मा शासक का रूप प्रदान किया जिसमें राज्य निर्माण को शासक के कार्यों तक सीमित कर दिया गया।

राष्ट्रवादी भावना की पृष्टभूमि में दशरत शर्मा ने चौहानों के इतिहास को लेकर राजपूताना में राज्य निर्माण के सन्दर्भ में अन्य महत्वपूर्ण इतिहास लिखा।[4] इन्होंने चौहान वंश के आधिपत्य वाले काल को लेकर चौहानों के अधीन राज्य निर्माण का अध्ययन किया तथा वंशों के प्रतिस्पर्द्धा तथा स्थानीय स्तर पर राजनैतिक सम्बन्धों के ताने बाने दिखाते हुये चौहानों के अधीन बनते राजनैतिक संस्थाओं को भी दिखाया है। उसने स्थानीय स्तर पर चौहानों की अन्य शाखाओं पर प्रकाश डाला है। इसके साथ समाज, आर्थिक, सांस्कृतिक पक्ष का भी वर्णन किया, परन्तु यह शासकीय दृष्टिकोण से ही लिखा गया राजनैतिक इतिहास है तथा घटनात्मक ही अधिक रहा।

विश्वेश्वर रेऊ ने मारवाड के राज्य के राजनैतिक घटना क्रमों को लेकर जोधपुर (मारवाड) का दो भागों में इतिहास लिखा जिसमें स्थानीय राजनीतिक ठिकानेदारों के सम्बन्धों, जोधपुर राज्य के शासकों की राजनैतिक सफलताओं तथा पश्चिमी राजपूताना में जोधपुर राज्य की प्रमुखता का महत्त्व दर्शाया गया।[5] रेऊ ने स्रोतों की जांच पड़ताल तथा ख्यात चारण भाट परम्पराओं तथा अभिलेखों व दूसरे स्रोतों के साथ पुष्टि करते हुये घटनाओं की विश्वसनीयता पर जोर दिया जिससे राजनैतिक इतिहास लेखन में स्रोतों की, विश्वसनीयता पर जोर दिया जाने लगा। रेऊ ने शासक वर्ग की संरचना तथा भूमिका को भी अपने इतिहास में जगह प्रदान कर इसे और अधिक व्यापकता से प्रस्तुत किया परन्तु मारवाड राज्य के उतार–चढ़ाव को दिखाते हुये ढांचागत संगठन, राज्य के बदलते स्वरूप आदि को शामिल नहीं किया, इससे अनेक महत्वपूर्ण पहलू अछूते ही रह गये।

राजस्थान के राजैतिक इतिहास को निर्णायक मोड प्रदान करने का श्रेय जी.डी. शर्मा को[6] है जिन्होंने जोधपुर राज्य की राजनीति, नीतिगत ढांचा, राज्य की संस्थाओं तथा उनकी बदलती भूमिका, राज्य के प्रमुख क्षेत्र, अधीनस्थ वंशों तथा शासक के प्रमुख क्षेत्र अधीनस्थ वंशों तथा शासक के साथ सम्बन्धों आदि नये विषयों को लेकर राजपूती राज्य व्यवस्था, राजपूती ढांचागत संगठन का विश्लेष्णात्मक तथा गम्भीर प्रयास किया। इस अध्ययन में राजपूती शासकों से जुड़ी घटनाओं व कार्यों को शौर्यता/वीरता की परिपाटी से निकाल कर मध्यकाल की राजनैतिक व्यवस्था में एक सामान्य शासकों के रूप में प्रस्तुत किया जो दूसरे शासकों के साथ सम्बंध रहते थे। शासकों से जुड़ी अतिश्योक्तीपूर्ण बातों को खारिज किया, इसमें मारवाड राज्य के 17वीं व 18वीं वर्षो के राजनैतिक घटनाक्रमों पर केन्द्रित किया है परन्तु ढांचागत बदलावों, राजपूत राजनीति में उनसे जुड़ी संस्थाओं की बदलती प्रकृति की ओर हमारा ध्यान दिलाया। यधपि मारवाड की राजनीति पर प्रभाव डालने वाले आन्तरिक (ठिकानेदार, अधीनस्थ राजपूतों) तथा बाह्य प्रभाव (मुगलों से सम्पर्क) दोनों का अच्छा विश्लेषण प्रस्तुत किया। इससे राजपूती राज्यों के ढांचागत विकास को समझने में अच्छी समझ बनती है। जी. डी. शर्मा ने राजपूती राज्यों में उभरती केन्द्रीयकरण की प्रवृति को उजागर किया जिससे हमें राजपूतों के सामन्तीकरण आवरण से बाहर सोचने पर मजबूर होना पडता है।

इससे राजपूत राज्यों के ढांचागत निरन्तरता एवम् बदलाव को जानने में सहायता मिली। यदपी जी. डी. शर्मा ने राज्य के आर्थिक पक्ष को उजागर किया परन्तु राज्य निर्माण के साथ जुड़े दूसरे पक्षों गैर–राजपूती वर्गों की प्रतिक्रिया, जनजातियों के साथ तालमेल, नये–नये क्षेत्रों का उपनिवेशीकरण आदि जो राज्य निर्माण को प्रभावित करते थे का उल्लेख कम ही किया।

राजस्थान के राजपूती राज्य के निर्माण को सबसे महत्वपूर्ण ढंग से एक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करने का अगला कार्य मैक्स हार्कोट द्वारा हुआ जिन्होंने अपने शोध पत्र में[7] बीकानेर राज्य के निर्माण में गैर–राजनैतिक तत्त्वों, करणी माता, स्थानीय लोकदेवी की भूमिका को उजागर किया। हार्कोट ने राव बीका राठौर द्वारा जांगल प्रदेश को जीतने, संगठित करने तथा राज्य को स्थायीत्व के लिए करणीमाता पंथ के महत्व पर जोर दिया। करणीमाता पंथ

एक स्थानीय लोक संस्कृति का हिस्सा था तथा इससे राव बीका को न केवल स्थानीय जातियों, जाटों एवं चारणों का साथ मिला अपितु एक प्रमुख स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में सफलता अर्जित की। यहाँ वी.डी. चट्टोपाध्याय के वैचाकरिता एकीकृत (स्थानीय) तत्त्वों का यानि राज्य की विचारधारा में संयोजन, सहयोग प्राप्त होकर एक राजनैतिक मजबूत इकाई के रूप में उभरकर सामने आना था। इस प्रकार गैर राजनैतिक तत्त्वों की राज्य निर्माण में भूमिका उजागर हुई तथा ऐसे तत्त्वों की तलाश जो राज्य निर्माण में विशेष महत्व प्राप्त हुआ। इससे राजपूतों के दूसरी निम्न जातियों के साथ सम्बन्धों पर नया प्रकाश पड़ता दिखाई दिया। इस प्रकार राज्य निर्माण में राज्य की वैधानिकता प्राप्त करने, राज्य के स्थायीत्व में उसकी भूमिका आदि को महत्व मिला।

मैक्स हार्कोट की विचारधारा के अनुरूप महत्वपूर्ण इतिहास लेखन नंदिनी सिन्हा कपूर द्वारा किया गया जिन्होंने मेवाड राज्य के उत्थान व विकास[8] को एक प्रक्रिया के रूप में दर्शाया तथा मेवाड के शासकों के स्थानीय आदिवासी जाति भील के सम्बन्धों को राज्य निर्माण में महत्वपूर्ण माना। नन्दनी सिन्हा कपूर ने ख्यातों, वंशावली अभिलेखों, लोकपरम्पराओं, जनश्रुतिओं सभी प्रकार के स्रोतो, का प्रयोग किया तथा मेवाड़ राज्य में भीलो के लोकदेवता व इष्टदेव एकलिंग से जुड़ने को उदघाटित किया। इस अध्ययन में घटनात्मकता का त्याग कर वैचारिकता पर प्रमुखता दी तथा बताया कि ये राज्य कैसे स्थानीय महत्वपूर्ण तत्वों को आत्मसात करके मजबूती प्राप्त कर रहे थे? ये सम्बन्ध सिद्ध करते हैं कि राजपूती राज्य निर्माण सभी स्थानीय तत्वों के संयोजन से भी बनता था। इस प्रकार राजस्थान के राज्यों के राजनैतिक इतिहास को घटना तथा एकवंश की प्रमुखता के दायरे से बाहर एक प्रक्रिया के रूप में देखने की नई परम्परा आरम्भ हुई तथा स्थानीय स्तर के तत्त्वों को एक साथ संयोजित करना हो रहा था तथा सत्ता का दोनों पर लम्बवत एवम् क्षितिज इस प्रक्रिया के अंग थे।

हाल ही में राजस्थान में मध्यकाल में राज्य निर्माण के शोध में एंथ्रोपोलोजीकल तथा समाजशास्त्री दृष्टिकोण से जुड़े इतिहासकारों द्वारा राजस्थान के राज्यों के निर्माण एवं बदले स्वरूप पर नये ढंग से विचार प्रस्तुत हुये जिन्होंने राज्य के साथ गैर राजनैतिक प्रभावों तथा सत्ता के सुदृढ़ीकरण के प्रयासों में महत्वपूर्ण मत प्रस्तुत किये। मोनिका हारस्टमैन ने आमेर के[9] शासकों के द्वारा 18वीं शताब्दी में हिन्दूवाद के प्रतीक वैष्णव पूजा स्थलों को दान–दक्षिणा में प्राथमिकता देने को मुगलों के पतन के पश्चात् हिन्दूवाद के पुर्नत्थान के रूप में देखा है तथा मुगल साम्राज्य के पतन से ऊपजी स्थिति में राजपूती शासकों के बदलते नजरिये को महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार ये सभी प्रयास राजपूत राज्यों के द्वारा ऊपजे संकट में अपने–अपने राज्यों को बचाने के प्रयासों का अंग थे।

इसी मत को आगे बढ़ाते हुये पीबोडी[10] द्वारा कोटा राज्य में 18वीं शताब्दी में वैष्णव मत को राज्य द्वारा संरक्षण देने को हिन्दू पुर्नत्थान का भाग बताया है, जब कोटा राज्य के सांस्कृतिक व धार्मिक कार्यों को वैधानिक के भिन्न तरीकों से देखा जा रहा था।

यदपि ये मत संशोधनवादी विचारधारा से प्रभावित नजर आते हैं तथा राजपूतों के शासकों द्वारा इस प्रकार के प्रयासों से मध्यकालीन साम्प्रदायिकता के मुद्दे से उपनिवेशवादी विचारधारा को और पुष्ट करना चाहते हैं। राजपूतो के स्थलों को दान दक्षिणा, राज्य द्वारा संरक्षण मिलता था परन्तु ऐसे उदाहरण पैतृक राज्यों (वतनजागीरों) में 16वीं व 17वीं शताब्दी में इसलिये कम मिलते हैं क्योंकि मुगलकाल में ये शासक अपनी सेवायें दूरदराज के क्षेत्रों में दे रहे थे तथा वहाँ वैष्णववाद को उसी तरह संरक्षण दिया जा रहा था, राजा मानसिंह द्वारा बंगाल के प्रमुख के रूप में गौडिया शाखा को काफी संरक्षण दिया गया था। चूंकि 18वीं शताब्दी में राजपूती शासकों के द्वारा गृहवापसी हुई स्थल ही उनका ठहरने का स्थान बन गया। इन रियासतों में संरक्षण के ऐसे उदाहरण ओर बढते गये। अतः यह मत एकांकी ही प्रतीत होता है परन्तु इन नये विचारों से यह तथ्य उजागर हुआ कि मध्यकाल में राजस्थान में राज्य निर्माण की प्रक्रिया के साथ अनेक तत्त्वों को राज्य के स्तर पर मिलाया जा रहा था जहां भी ऐसा आवश्यक था तथा सामाजिक–धार्मिक तत्त्वों ने भी इस प्रक्रिया में कई स्तरों पर उल्लेखनीय भूमिका निभाई, अतः राज्य निर्माण में इन तत्त्वों के स्थान को भी देखते हुए राज्य निर्माण को समझना होगा। परन्तु जैसा कि बताया गया है कि मध्यकालीन राजस्थान के राज्य निर्माण को केवल एक वंश प्रमुख शासकों को केन्द्र में रखते हुए नहीं समझा जा सकता है, इसके लिये हमें स्रोतों के महत्व को भी समझना होगा। अभिलेखों, पदावली, वंशावली आदि परंपराओं में राजपूत राज्य के निर्माण के सम्बंध में यही सामग्री मुख्यतः प्राप्त होती है तथा ख्यातों की दी गई सामग्री का चुनाव भी इन्हीं द्रष्टिकोणों से हुआ, परन्तु राज्य निर्माण को एक प्रक्रिया के रूप में देखने की जरूरत में इन स्रोतों विशेषकर ख्यात रचनाओं मे उल्लेखितं सामग्री जो सामाजिक व सांस्कृतिक, आर्थिक विकास से जुड़े तथ्यों को भी समाहित किये हैं, महत्वपूर्ण हो जाती हैं। यदपि ख्यात रचनाओं की सामग्री में उल्लेखित घटनाओं, बातों को अतिश्योक्ति पूर्ण बताया परन्तु ये राज्य निर्माण से जुड़ी दूसरी सच्चाईयों नये–नये सामाजिक वर्गों का प्रवास, उपनिवेशीकरण, सामाजिक वर्गों के बीच सम्बन्ध, राजपूतीकरण की प्रक्रिया आदि ऐसे सामाजिक–धार्मिक एवं प्रक्रिया को उजागर कर जो राज्य निर्माण के विषय को अन्तर्विषक व व्यापक गहराई से समझने में मदद मिलती है।

इन राज्य निर्माण से जुड़े विश्लेषणों से स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन राजस्थान के राजपूती राज्यों के निर्माण को एकाकी हो, मात्र शासकों, वंशों, उनसे जुड़े घटनाओं तक सीमित रख कर नहीं समझा जा सकता है, अपितु यह प्रश्न राजपूती छवि, पहचान, राजपूती सामाजिक संस्थाओं, राजपूतीकरण से जुड़े मूल्यों, मान्यताओं आदि से गहरे रूप से जुड़ा था जो इन राज्यों की ढांचागत व्यवस्था तथा प्रशासनिक स्तर की अवस्थाओं को प्रभावित करते थे। अतः राजपूती समाज एवं राजनीति से जुड़े विभिन्न पहलु, जो नैणसीरी ख्यात में उल्लेखित बातों में दर्ज हैं राज्य व्यवस्था की निरन्तरता एवं बदलावों की जानकारी का महत्वपूर्ण माध्यम है जहाँ सीधे तौर पर न दर्शाकर, इन बदलावों से उपजी चिन्ताओं एवं तनावों से नीचे के ढांचागत परिवर्तनों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं, परन्तु निरन्तरता एक परिवर्तनों को राजपूतों की प्रचलित संस्थाओं के आलोक से ही तुलनात्मक अध्ययनों से ही समझा जा सकता है।

राजपूती राजनीति एवमं समाजः प्रमुख संस्थाएं

राजपूती वर्ग का उत्थान पूर्व–मध्यकालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम था जब अनेक कबायली समूहों से जुड़े वर्गों को शासकीय स्तर की हैसियत का दर्जा प्राप्त हो जाता था।[11] यह एक प्रक्रिया थी जिसे राजपूतीकरण कहा जाता है। राजपूत वर्ग अपने मूल से मिश्रित वर्गों से आये थे तथा इस प्रक्रिया के साथ इनकी पहचान को दर्शाने, बनाये रखने के अनेक मानक (मूल्य व्यवहार) सामाजिक एवं राजनैतिक स्तर पर उभर कर सामने आये जो एक राजपूत को व उसकी पहचान को परिभाषित करते थे। अतः पूर्वमध्यकाल में स्थापित ये मूल्य, मान्यतायें राजपूतों की पहचान के प्रतीक थे। यदपि राजपूतों की प्रथम पहचान वंश/कुल विशेष से जुड़ी थी तथा इसी तथ्य को नैणसी के द्वारा प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। नैणसी ने राज्य व वंश को अविभाज्य रूप से दर्शाया है तथा किसी भी राजपूत की हैसियत व दर्जा उसके वंश से आंका जाता था। वंश की मान मर्यादा की, वंश की भूमि की, क्षेत्रभूमि के छिनने का अर्थ था राजपूती दर्जा खतरे में पड़ना, इसीलिए भूमि की रक्षा के लिए, वैर साधना, वंशानुवंशगत शत्रुता बनाये रखना परम कर्त्तव्य माना जाता था।[12] इसी क्रम में वंश की अनेक उपशाखाएं भी जुड़ी होती थी, यदपि वे किसी मुख्य वंश की थी। परन्तु क्षेत्रीय स्तर पर इनके उपवंशों का उभार होने लगा था तथा वह शाखा, अन्य किसी नाम से स्थानीय ठिकानेदार के नाम से *'बात', 'वती'* के रूप में जुड़ जाती थी।[13] इस क्रम में राजपूती शौर्यता प्रदर्शन, वीरता, युद्ध के निरन्तर सम्बन्धो से उपजी। ये सम्बन्ध केवल एकवंश से दूसरे वंश तक सीमित नहीं थे अपितु राजपूत वंशों का विस्तार अनेक क्षेत्रों में जनजातीय लोगों के साथ भी हुआ। नैणसी ने सिसोदियों के द्वारा मेर, मीणा जातियों की कीमत पर विस्तार होना बताया है।[14] बूंदी के हाडाओं ने बूंदी पर मीणा जाति को अपदस्त कर अपना राज आरंभ किया था[15] राठौर राजपूतों को पाली क्षेत्र में राज्य निर्माण की सफलता कन्हा नामक मेर सरदार को हराने के बाद ही मिली थी।[16] परन्तु राजपूतों के संबंध सभी स्थानों पर बसे जनजातिय वर्गों से हुये आवश्यक नहीं था। मेवाड के राणाओं द्वारा राज्य निर्माण की दिशा में कदम तब बढ़ा जब स्थानीय भील जाति को सहअस्तित्व के आधार पर राज्य व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान दिया।[17] मेवाड के शासकों ने भील जाति के इष्टदेव 'एकलिग्य' को राज्य देवता का दर्जा दे वैधानिकता का माध्मय बनाया, परन्तु राज्य निर्माण की इन आरंभिक अवस्थाओं में वंशों के प्रभाव क्षेत्रों के निर्माण में स्थानीय स्तर पर जनजातियों (बसे जनजातिय) वर्गों के साथ संपूर्ण वंशीय संबंधों के इलावा स्थानीय स्तर के भूमियों के संबंधों को वंश की सामूहिकता से बाहर व्यक्तिगत स्तर पर, राजपूत छवि, पहचान को गिराने वाला समझा जाता था। पाबूजी की बात में नैणसी ने दर्शाया है कि थोरी जाति को संरक्षण देने के लिए पाबूजी की राजपूती पहचान में गिरावट का संकेत राजपूती समाज में माना गया, तथा दूसरे राजपूतों द्वारा पाबू जी की हंसी उडाई जाती थी। पाबू जी को राजपूती समाज में गिरती छवि के बचाव में अनेकों अवसरों में राजपूती मूल्यों, वचनपालन, वैरसाधना, शौर्यता,

लूटमारी अभियानों का नेतृत्व करना आदि प्रयत्न करने पड़े थे और राजपूती अस्मिता के बचाव में (घोड़े के दल की प्राप्ति के लिए) विशेष राजपूती धर्म का पालन करने के लिए अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी।[18]

इस प्रकार वंश के दायरे से बाहर निकलने पर राजपूती पहचान को खतरा था तथा प्रत्येक राजपूत के लिए इसे बनाये रखने के लिए राजपूती मूल्यों के अनुरूप व्यवहार अनिवार्य हो जाता था। इस प्रकार राजपूत के सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन का केन्द्रीय भाग वंश प्रणाली थी तथा वंशीय सम्बन्ध में बच चढ़कर भाग लेना, शौर्यता का प्रदर्शन, वंश के प्रति निमठा भाव की मर्यादा, वंश की क्षेत्र की रक्षार्थ प्राणों की आहुति परम राजपूती धर्म में गिना जाता था। प्रतिरोधात्मक वैर साधना का प्रमुखता से पालन किया जाता था, इस प्रकार कुल के मजबूत गठबंधन–रक्त संबंधों का प्रतीक था, उसके प्रति व्यवहार से राजपूती पहचान परिभाषित होती थी। चारण भाट परम्परा को इन मूल्यों का संरक्षण, व्याख्याकार माना जाता था जो शासक के इतिहास को इन्हीं राजपूती मूल्यों से उभारते थे तथा संरक्षित रखते थे। परन्तु आरंभिक राज्य व्यवस्था का (वंश केन्द्रित राज्य) संस्थागत ढांचा का मुख्य आधार *भाई बाट* प्रणाली थी।

वंशीय एकता सामूहिकता के बाहर *भाई बाट* प्रणाली राज्य विस्तार

(क्षेत्राधिकार) का महत्वपूर्ण साधन थी जो राज्य व उसकी व्यवस्था को संपूर्ण कुल का साझा सामूहिक, भाई–चारे के आधार पर गठित करती थी। राज्य के वंश से जुड़े होने के लिए राज्य की भूमि को बराबर भागों में कुल के परिवारों में बांटा जाता था तथा सभी अपने–अपने क्षेत्रों में एक स्वतंत्र शासक की भांति व्यवहार करते थे तथा मुख्य शासक इनके कार्यप्रणाली में उत्तराधिकार के लिए वंशानुगत दावा उचित होता था। राज्य के प्रति इन इकाईयों का मुख्य कर्त्तव्य राज्य की रक्षा के लिए सेना का प्रबंध करना था तथा अन्य कुल वंश से कोई गठजोठ नहीं करना था।

वास्तव में भाई बाट प्रणाली आरंभिक राज्य व्यवस्था में सामन्तीय मूल्यों, विकेन्द्रितकृत वैचारिकता का प्रतीक, थी परन्तु स्थानीय वंश के परिवारों के लिए उनकी स्थानीय स्वायत्तता अलग स्वतंत्र छवि, अस्मिता का प्रतीक थी व स्थानीय स्तर पर इस वैचारिकता को बहुत महत्व दिया जाता था। इन मूल्यों में बदलाव आक्रमण का तीव्र प्रतिरोध किया जाता था क्योंकि यह स्थानीय व्यवस्था राजपूती स्तर की स्थानीय अस्मिता से जुड़ी थी। समानता, स्वायत्तता, वंशीय श्रेष्टता को *भाई बाट* प्रणाली से मापा जाता था। अतः *भाई बाट* प्रणाली की निरंतर प्राप्ति के लिए राजपूतों का शासन वैध माना जाता था।[19] राव मल्लिानाथ ने *भाई बाट* प्रणाली के अधीन अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् दावा किया तथा कान्हदेव को मजबूर कर *भाई बाट* प्रणाली के अन्तर्गत पैतृक क्षेत्र को प्राप्त करने में सफलता पाई तथा अपने भाइयों में प्राप्त क्षेत्र का बराबर बंटवारा किया।[20] यह स्थिति स्थानीय स्तर पर भाई बाट प्रणाली के व्यवहार का प्रभाव दर्शाती है तथा आरंभिक राजपूती राज्य प्रणाली की प्रथम अवस्था का प्रतीक थी।

सम्भवत् यह जन जातीय कबायली प्रणाली का अवशेष था तथा 16वीं शताब्दी तक यही राजपूतों की ढांचागत प्रणाली का आधार रहा। इसीलिये बहुत से इतिहासकार इस राज्य व्यवस्था को परिपक्व राज्य प्रणाली न मानकर आदिम लक्षणों की प्रणाली मानते हैं।[21] हालांकि *भाई बाट* प्रणाली वंश की फैलाव का सशक्त माध्यम थी क्योंकि इसमें सभी को राज्य की सीमाओं से बाहर स्वतंत्र सैनिक अभियान चलाने की छूट होती थी।[22]

राज्य के प्रशासनिक एवं सैनिक दोनों स्तरों पर भाई बाट प्रणाली की गहरी छाप थी तथा दोनों पर वंश के जुड़े भाई बन्ध ही संचालन में भूमिका निभाते थे। अतः राज्य व्यवस्था वंशीय रक्त संबंधों, उत्तरदायित्वों से चलती थी जो राज्य व उसकी प्रणाली को संयुक्त भाईचारे के बीच आपसी गठजोड के महत्व को दर्शाता है। यदपि इस व्यवस्था में दूसरे वंश का प्रवेश नातेदारी को बढ़ाने की एक अन्य प्रणाली राजपूतों के समाज एवं राज्य में प्रचलित थी जो *सगा* कहलाती थी।[23] यह दो वंशों के बीच वैवाहिक संबंधों से संबंधित थी तथा बराबरी के संबंधों को मान्यता देती थी। ख्यात में वैवाहिक समझौते बने मामा–भान्जा के संबंधों तथा क्षेत्रीय अधिकार के दावों का सभी वंशों की वंशावली में स्वीकार किया गया है।[24] इसमें कुलों के बीच वैवाहिक संबंधों से सुदृढ़ता तथा अपने वंश का फैलाव मिलता था। इस प्रकार वैवाहिक संबंध भी किसी राजपूत की हैसियत को स्थायीत्व प्रदान करने का माध्यम था। पाबू जी द्वारा सोढी राजकुमारी से वैवाहिक रिश्ते को पाबू जी के गिरते राजपूती दर्जे को पुनः स्थापित करने से भी जुड़ा था। यदपि विवाह के सम्पन्न होने से पूर्व वचन पालन के लिए पाबू जी लाछा चारणी के पशुधन की रक्षा के लिए जिन्द राव खीजी से युद्ध करना पड़ा जिसमें वे वीरगति को प्राप्त हुये। फिर भी सोढी राजकुमारी ने राजपूती धर्म पालन से सती होना स्वीकारा। इस प्रकार बराबरी के संबंधों से जुड़ी मान्यता पुष्ट हुई।[25] 'सगा' से जुड़े संबंध कबायली मान्यता नातेदारी को मजबूती प्रदान करती थी व क्षेत्र पर बराबरी के अधिकार की मान्यता को पुष्ट करती थी।

यदपि वंश के अन्तर्गत जुड़े सभी स्थानीय परिवारों के बीच साधनों, शक्ति, हैसियत को लेकर एक विभिन्न हमेशा कायम रही, फिर भी एक वंश एक शासक के प्रति निष्ठा इन्हें बराबरी में बांधती थी। वंशीय, भाई बाट प्रणाली से बाहर अधीनस्थ सामान्य (चाकरी) भी इस व्यवस्था में मान्य संस्था थी जिसमें आरम्भ में दूसरे वंश के अधीनस्थ राजपूती वर्गों को राज्य व्यवस्था से जोड़ा जाता था। ये अधीनस्थ मुख्यतः सैनिक दस्तों का प्रबंध करने वाले सेवक थे जिनको एक क्षेत्र पर अधिकार को मान्यता इस आधार परकि वे नियमित रूप से सैनिक सेवा उपलब्ध करायेंगे। स्थानीय स्तर पर सेवक–अधीनस्थ के बीच संबंध को निश्चित सेवा भाव उत्तरदायित्वों के नियमों से जोड़ा जाता था।[26] अधीनस्थ सेवाभाव (चाकरी) के व्यवहार से नई सामाजिक-राजनैतिक संस्था का आगमन हुआ था तथा नातेदारी रक्त संबंधों की कमजोर (विकेन्द्रीयकरण) व्यवस्था में बदलाव का प्रतीक थी। अधीनस्थ सेवा भाव (चाकरी) व्यवस्था वास्तव में स्थानीय ठिकानेदारों द्वारा वंशीय की दायरे से बाहर अपनी स्थिति मजबूत करने, प्रभाव के दायरे को केन्द्रिकृत करने का हिस्सा थी, परन्तु राज्य व्यवस्था के लिए नई अवस्था के आगमन का सूचक थी। अतः 16वीं शताब्दी तक भाईबाट सगा प्रणालियाँ ही सभी राजपूती राज्यों की व्यवस्था का मुख्य प्रभावकारी आधार बनी रहीं।

राज्य व्यवस्था की ओर संक्रमण की अवस्थाः *भाईबाट चाकर*

16वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध तथा 17वीं में राजपूती राज्य व्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव का संकेत मिलता है जब अधिकांश राज्यों के मुख्य शासकों द्वारा अपने वंश/

कुल के सगे संबंधियों के साथ *भाई बाट* बराबरी के संबंधों को *भाई बाट चाकर* व्यवस्था द्वारा बदलने के प्रयास होने लगे। यह राजपूती राजनैतिक ढांचे में नई संस्था के प्रवेश द्वारा कबायली मूल्यों कि मान्यता वाली प्रणाली को समाप्त कर केन्द्रिकृत व्यवस्था की ओर बढ़ना था।[27] *नैणसी री ख्यात* में स्पष्ट उल्लेख है कि मुख्य शासक वंशीय भाई बाट प्रणाली की भाई चारे, सामूहिकता की जनजातिय कही जाने वाली व्यक्तिगत निष्ठा की ओर बढ़ना चाहते थे तथा भाई बाट प्रणाली के अन्तर्गत स्थानीय स्तर पर प्राप्त विशेष अधिकारों की मान्यता को समाप्त कर सीधे साधनों को अपने अधीन लाना चाहते थे व वंशानुवंशगत अधिकारों के दावों को सेवा भाव से देखने लगे थे। अतः यहां राजपूती दर्जा, हैसियत, पहचान के नये मूल्यों की तलाश, आरम्भ होने लगी तथा पुराने मूल्य व मान्यता को खतरा होने लगा। यह नई व्यवस्था सीधे तौर पर स्थानीय स्तर पर साधनों तथा सत्ता पर अधिक नियंत्रण लाने का प्रयास थी तथा इसके स्थानीय राजपूती ठिकानेदारों के अधिकारों में कटौती होना जुड़ा था, अपितु इनसे जुड़ी राजपूती पहचान, अस्मिता के खोने का खतरा था। वास्तव में यह वैचारिकता बदलाव का सूचक था।[28] ऐसे बदलावों के विरोधात्मक प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था क्योंकि पूरी राजपूती अस्मिता नये ढंग से परिभाषित होनी थी, *नैणसी री ख्यात* में दर्ज बातें इन्हीं बदलाव की प्रतिक्रिया को दर्शाती हैं।

ख्यात में दर्ज मल्लिनाथ से संबंधित बात में व्यवस्थाओं के अनेक अन्तर्गत उभरकर सामने आते हैं। मल्लिनाथ के पिता वरिष्ट पद पर स्थानीय स्तर के ठिकानेदार थे, उनकी मृत्यु के उपरान्त चाचा कान्हडदेव जो स्वयं भाई बाट प्रणाली के आधार पर मल्लिनाथ के पिता के समानान्तर ठिकानेदार के पद पर थे, ने मल्लिनाथ को उसके वंशानुगत पैतृक दावेदारी (विरासत) से वंचित करने की नीति अपनाई। उसने मल्लिनाथ को बराबरी का दर्जा किसी भी रूप में स्वीकार नहीं किया तथा उसे एक अधीनस्त (चाकर) के रूप में अपने गठबंधन में रखना स्वीकार किया। मल्लिनाथ ने प्रतिकूल परिस्थितियाँ देखकर कान्हडदेव के चाकर की स्थिति को स्वीकार किया तथा अपनी योग्यता के बल पर शक्ति को जुड़ाना आरम्भ किया, जल्द ही उसने अपनी विरासत को प्राप्त करने के दावे जताने आरम्भ किये तथा ऐतिहासिक बात में दर्ज है कि उसने न केवल भाई बाट प्रणाली के आधार पर अपना हक लेने की जिद की अपितु कान्हडदेव को अपनी शक्ति प्रदर्शन से भयभीत कर शासक वर्गों के दूसरे ठिकानेदारों के सामने कान्हडदेव को वचनों से बांध दिया। संपूर्ण बात में मल्लिनाथ को चाकरी प्रणाली के विरुद्ध अनेकों बार आवाज उठाते दिखाया गया है। मल्लिनाथ ने अपनी पैतृक विरासत को अपने सगे भाइयों में बराबरी के आधार पर बांटा। तत्पश्चात् मल्लिनाथ ने राठौर राजपूतों के इस क्षेत्र में स्थानीय स्तर पर स्थिति काफी मजबूत की, पाबू जी की बात में भी हम पाबूजी को अपना राजपूती दर्जा बरकरार रखने के लिए संघर्ष पाते हैं तथा अनेक मौकों पर उसके राजपूती दर्जे को खतरे में पाते हैं। पाबूजी राजपूती धर्म व छवि के रूप मे राजपूती अस्मिता के लिए अपने प्राणों को भी दाव पर लगा देते हैं। उन्होंने राजपूती वचन साधने, वैर साधने, राजपूती मूल्यों को हमेशा प्राथमिकता दी। पाबूजी को कोलू गांव की जागीर में एक कम महत्वपूर्ण राजपूत योद्धा के रूप में पाते हैं तथा उसके वंश के द्वारा, उसके राजपूती धर्म निर्वाह न करने जैसे– स्थानीय जनजातियों से जुड़ना (थोरी जाति के भाइयों को शरण देना) आदि से उसका राजपूती दर्जा को पुनः अपने वीरता शौर्यता के कारनामों, सिन्ध क्षेत्र से ऊंटो की लूटमारी अभियानों, स्थानीय पशुधन की रक्षा तथा घुड़सवार योद्धा के रूप में अपने स्तर को बनाये रखना, राजकुमारी से वचन साधना, वंश की मर्यादा के अनुरूप रक्षार्थ प्राणों की बाजी लगाना आदि कारनामों से अपनी छवि को गिरने नहीं देते हैं। पाबू जी एक राजपूती धर्म पालक के श्रेष्ट योद्धा बन कर उभरते हैं तथा भाई बाट प्रणाली के अनुरूप व्यवहार के हिमायती हैं।

परन्तु इन मूल सिद्धान्तों के अतिरिक्त 16–17वीं शताब्दी में राजपूती समाज एवं राजनीति में नई संस्थाओं एवम् उनसे जुड़े मूल्यों के प्रवेश होने के लक्षण हमें ख्यात में मिलने आरम्भ होते हैं। ये राजपूती राज्य व्यवस्था में बदलावों, परिवर्तनों का सूचक थी तथा नैणसी री ख्यात में वंशों के इलावा दर्ज बातों, का हाल इन्हीं बदलावों से ऊपजी स्थिति की ओर ध्यान खीचने का माध्यम है। इसलिए इन संदर्भों में पुनः नैणसी री ख्यात का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।

दूसरी ओर हम पाते है कि कान्हडदेव चाकरी प्रणाली से अपने वंश तथा दूसरे वंश पर अपनी सत्ता को विस्तार दे रहा था जो भाई बाट प्रणाली के बराबरी के अधिकार के दावों के प्रभाव को कम कर सेवाभाव, व्यक्तिगत निष्ठा की ओर मोड़ता था।

मल्लिनाथ का बार–बार पैतृक दावा, स्थान पहचान का दावा, इन बदलावों को नकाराना अर्न्तविरोधों को दर्शाता है। इस प्रकार मल्लिनाथ की वैचारिकता भाई बाट प्रणाली के पक्ष में थी तथा परिवर्तनों का प्रतिरोध करती है। यह स्थिति स्थानीय स्तर पर बढ़ते केन्द्रिय दबाव से ऊपजी स्थिति थी। इससे राजपूती पहचान, हैसियत उन मूल्यों के अनुरूप नहीं ठहरती थी जो आरंभिक मध्यकाल उनकी वैचारिकता से जुड़े थे। यही बात नातेदारी पर लागू हो रही थी जो 16–17वीं शताब्दी में चाकरी प्रणाली द्वारा ध्वस्त की जा रही थी।

शासक के स्तर पर चाकरी प्रणाली को भाई बाट प्रणाली के स्थान पर इस आशय से लागू किया जा रहा था कि इससे दूसरे कुल के प्रति निष्ठा, समर्थन व्यक्तिगत आधार पर प्राप्त हो सकता था। यदपि चाकरी, नौकर की भांति नहीं थी, वह एक सैनिक सेवादारी थी जिसका एक निश्चित भूभाग पर अधिकार था तथा अधिपति से नये गठबंधन का सूचक था। चाकर के साथ नये प्रकार के संबंध विशिष्ट उत्तरदायित्व के साथ जुड़े थे। 'सेवा देना', जिनके पालन का वचन देना होता, सेवानिष्ठा का वचन देना होता था जो एक अधीनस्थ सामन्तीय भाव को दर्शाता है। चाकर की उक्त शासक के ठाकुर पदवी से पहचान होती थी। चाकरी व्यवस्था स्थानीय स्तर पर एक शासक ढांचे में सुदृढ़ स्थिति का प्रतीक थी। यह वास्तव में राजपूतों की संख्याओं पर मुगलिया प्रभावों से जुड़ी थी। मुगलों से जुड़ने से राजपूत वर्ग के शासकों को व्यक्तिगत निष्ठा को स्वीकार करना पड़ा व दूसरी ओर उनकी अपने स्थानीय कुल पर निर्भरता में कमी आई। अब इन शासकों ने एक निश्चित नीति के अन्तर्गत अपने वंश की स्थानीय शाखाओं पर नियंत्रण बढ़ाने की आवश्यकता महसूस की तथा उनके स्थानीय साधनों पर नियंत्रण बढ़ाना चाहा जिनका उपभोग ये स्थानीय शाखा वाले भाई बाट प्रणाली के आधार पर बनाये रखते थे। स्थानीय स्तर पर इन प्रयासों से न केवल हैसियत बदली अपितु वंशीय परम्परा के संबंध एकदम उल्ट गये। प्रमुख शासकों ने स्थानीय कुलों के विरुद्ध सैनिक अभियानों से भी परहेज नहीं किया ताकि कुल, जन्म के अधिकारों के प्रभाव कम हो। इस प्रकार यह रूपान्तरण मात्र संस्थागत नहीं था अपितु पूरी वैचारिकता के बदलावों से जुड़ा था। इससे न केवल स्वायत्तता जुड़ी थी अपितु राजपूती पहचान, हैसियत को खतरा दिखाई दिया। स्वाभाविक है कि स्थिति कमजोर होने पर वैचारिक स्तर पर इन शासकों को पुनः राजपूती मूल्यों की दुहाई तथा प्रतिरोध के वैकल्पिक साधन तलाश किये गये।[30] इससे आरम्भिक परंपराओं के राजपूती व्यवहार से जुड़े मूल्य पुनः उठ खड़े हुये तथा उसी के संदर्भ में दावेदारी उभरने लगी।

© 2018, SKIJMR All Rights Reserved

नैणसी री ख्यात जिस पर यह विश्लेषण आधारित है, यह राजपूती समाज एवं राज्य प्रणाली की निरन्तरता एक बदलाव तथा दोनों ढांचागत परम्पराओं व नये ढांचागत बदलावों से ऊपजी स्थिति को समझने में एक बहुमूल्य ऐतिहासिक दस्तावेज है। राजस्थान के इतिहास से जुड़े इतिहासकारों ने मध्यकाल के राज्य निमार्णों को समझने के लिये इस स्रोत का अच्छे से प्रयोग भी किया है क्योंकि वंश की (शासक की वंशावली) वंशावली उसे नैणसी ने गहराई से स्थानीय उपशाखाओं के साथ दिया है, जिसमें क्रमबद्धता है। नैणसी ने इसके साथ–साथ अनेकों ऐतिहासिक बातों, शासकों के कारनामों को भी बीच–बीच में स्थान दिया है। ये बातें न तो प्रमुख शासकों की हैं, न ही ऐसे वीरों की जिन्होंने किसी वंश के राज्य निर्माण में कोई उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। फिर भी इनका विश्लेषण किया जाता है तो ये बहुत ही महत्वपूर्ण ढंग से राजपूती वीरता, शौर्यता, वचनबद्धता, वैर साधना, शत्रुता प्रतिरोध, अपनी हैसियत को प्रमाणित करना, राजपूती धर्म, राजपूती मूल्यों व मान्यताओं की पुनः स्थापना पर जोर देती नजर आती हैं जिसे उन हालातों के प्ररिपेक्ष में समझना आवश्यक है जिसमें नैणसी द्वारा इन्हें महत्वपूर्ण मान ख्यात में स्थान दिया।

वास्तव में नैणसी के काल तक राजपूती समाज, राजनीति के मूल आधारों को कई स्तरों पर बदलने की चेष्टा सफल रूप से राज्यों के शासकों द्वारा हो चुकी थी तथा नये ढांचागत बदलाव के प्रयासों से स्थानीय स्तर पर केन्द्रिय नियंत्रण बढ़ने लगा था जिससे स्थानीय ठिकानेकारों द्वारा प्रतिकार, प्रतिरोध प्रतिक्रिया जरूर हुई। नैणसी जो राजपूती मूल्यों–मान्यताओं का प्रतिरक्षक के रूप में बन, बनाये रखने का समर्थक था तथा किसी भी प्रयास से ऊपजी स्थिति, तनाव, चिन्ताओं उसके काल के मूल में थे। वह इन ऐतिहासिक बातों के द्वारा ढांचागत बदलावों के प्रति अपनी असहमती दर्ज करवाता नजर आता है।

यहां इन बातों की ओर ध्यान तभी जाता है जब हम नैणसी ख्यात को परम्परागत ढंग से (केवल राज्यों के निर्माण की वंशावली) हट कर देखते हैं तथा राजपूती राज्य एवं समाज की प्रणालियों की कार्य प्रणाली में आये महत्वपूर्ण बदलावों की चेष्टा व उनके प्रति प्रतिक्रिया को जाना।[31] इस दृष्टि यह ख्यात भिन्न नजरिया प्रस्तुत करती है। इसीलिये जहां नैणसी ने राणाप्रताप, राणासांगा, चौहानों के मुख्य शासकों को सीमित बातों में समेटा, वहीं स्थानीय छोटे दर्जे के शासकों की ऐतिहासिक बातों को विस्तार से शामिल किया। इसका कारण उसके द्वारा उन्हीं बातों को लिया गया जहां राजपूती मूल्यों से जुड़ी चिन्तायें दर्ज थी। परन्तु जैसा स्पष्ट है, दोनों राजपूती मूल्यों–मान्यताओं के रक्षक के रूप में खडे नजर आते हैं व स्थानीय स्तर पर राजपूती मूल्यों के व्यवहार का एक पक्ष दर्शाते हैं। इसी परिपेक्ष में यह समझना जरूरी है कि 17वीं शताब्दी में लिखी गई नैणसी री ख्यात समाज व राज्य व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को समझने में हमारी मदद करती है।

संपूर्ण मध्यकालीन राज्य व्यवस्था राजपूतों के अधीन एक समान नहीं रही अपितु वह भी अनेक आन्तरिक शासक वर्गीय दबावों, गठबंधनों तथा ब्राह्म तत्वों–केन्द्रीय सत्ता के साथ सम्बन्धों से प्रभावित भी रही तथा बदलाव के दौर से गुजरी। ऐसी परिस्थितियों में पुराने संस्था/मूल्यों के नये मूल्यों के बीच संस्थागत रूप से तनाव, संघर्ष तथा नई चिन्तायें व तनाव उभरना स्वाभाविक था। नैणसी री ख्यात में इन्हीं मूल्यों के बीच उभरी चिन्ताओं की ओर इशारा कर नई परिस्थितियों के वर्षो पुरानी परम्परा के मूल्यों को बचाने की कामना भी दर्ज होती नजर आती है। अतः ये दर्ज बातें वास्तव में राजपूती मूल्यों की निरन्तरता एवं बदलावों को जांचने–समझने का उपयुक्त स्रोत है जिनसे हम मध्य कालीन राज्य व्यवस्था को निर्धारित करने वाली संस्थाओं के साथ निरन्तरता एवं बदलाव के रूप में एक प्रक्रिया के दृष्टिकोण से समझने का प्रयास कर सकते हैं। इस प्रकार हमें मध्यकालीन राजपूती राज्यों की व्यवस्थाओं व कार्यप्रणाली को समझने का ये बातें प्रभावशाली साधन हैं।

नौकरशाही वर्गीय राज्य व्यवस्था की ओरः–

17वीं शताब्दी में राज्य ढांचागत दृष्टी से नये बदलाव पट्टादारी प्रणाली की ओर हमारा ध्यान खींचता है।[32] यह सीधी वंशानुगत अधिकारों पर चोट थी क्योंकि इस व्यवस्था में राज्य की व्यवस्था से जुडने (मनसबदारी प्रणाली की भांति) के लिए निश्चित कर शासक द्वारा दिया जाता था तथा नियत घुड़सवारों की संख्या निश्चित कर, उसे खर्च के बराबर राज्य के क्षेत्र का भू–राजस्व प्राप्त करने का अधिकार दिया जाता था जिसमें भू–राजस्व के अनुमानित आकलन की *रैव* पद्धति को अपनाया जाने लगा।[33] वास्तव में शासक वर्गों के साथ मुख्य शासक द्वारा पट्टे पर आधारित संबंधों को अधिक जोर दिया जा रहा था। यह वास्तव में इन वर्गों को नौकरशाही के रूप में बदलना तथा राज्य के लिए पूर्णतः निर्भर बनाना था। मारवाड के शासक राजा उदय सिंह के काल में वंश से जुड़े सभी परिवारों को पट्टा के आधार पर सेवाभाव के नये संबंध बनाने पर जोर दिया जाने लगा तथा एक क्षेत्र के भू–राजस्व को प्राप्त करने के स्थायी अधिकार के स्थान पर अब ठिकानेदारों के तबादले भी किये जाने लगे। वास्तव में यह प्रथा मालदेव के द्वारा शुरू की गई थी।[34]

इस प्रकार परम्परा अनुसार स्थानीय वंशानुगत अधिकारों को तोड़ प्रशासन के स्तर पर अधिक से अधिक केन्द्रिकरण की ओर राज्य व्यवस्था को मोडना था जिसे भाई बाट प्रणाली के बचे हुये लाभों को समाप्त करना तथा स्थानीय साधनों को सीधे शासक के नियंत्रण लाना था जो सीधे शासक के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा पर आधारित थे। यह पद, पदक्रम, निष्ठा के नये मापदण्ड तथा राजपूती पहचान के नये आधार बनने की ओर प्रयास था।[35] जिससे राजपूती परम्परागत मूल्यों की पहचान धूमिल होती जा रही थी। राज्य की सेवा के बदले नौकरशाही वर्ग की भांति उन्हें वेतन 'रैव' के रूप में दिया जाने लगा था। अब ठिकानेदारों को राज्य के प्रति बहुत से उत्तरदायित्वों को पूरा करने का व्यक्तिगत दबाव रहता था। इससे स्थानीय भू-राजस्व के आंकड़ों से वास्तविक आय जानने का अवसर प्राप्त हुआ।

घुड़सवार का अनुमानित आय के आधार पर निर्धारण किया जाता था तथा व्यय अधिक होने पर तलब व्यवस्था में पूर्ति पूरा करने के प्रयास होते थे।[36] इससे स्थानीय स्तर पर स्थानीय रक्त संबंधों पर आधारित क्षेत्रीय जमीनी हक के दावों को ओर कमजोरी मिली तथा पट्टा भी जमीनी हक, राजपूत नई पहचान का माध्यम बनने लगा जिससे परपंरागत पहचान के दावे धुमिल होने लगे। अब प्रशासनिक स्तर पर ओहदे, प्रतिष्ठा, पहचान के नये रूप व तरीके उपलब्ध होने लगे जिससे सत्ता से जुड़े रहने के नये माध्यम ईजाद हुये। यह राजपूती समाज के राज्य के स्तर पर ढांचागत परिवर्तनों का घोतक थे तथा निष्ठा की राजपूती अवधारणा वंश, कुल की सीमाओं से बाहर, व्यक्तिगत स्तर पर निर्धारित होने लगी। हालांकि ये ढांचागत बदलाव सहज नहीं थ, इन्हें ऊपर से जबरन परिवर्तनों को आरोपित किया

गया तो स्थानीय स्तर पर भिन्न–भिन्न प्रतिक्रिया भी दिखाई दी क्योंकि स्थानीय स्तर पर परम्परा, मूल्य, मान्यतायें प्रभावी थी तथा स्थानीय स्तर के ये मूल्य–मान्यतायें से ही उनके हकों का प्रश्न जुड़ा था । अतः ढांचागत बदलाव से तनाव (प्रतिरोधात्मक) उभरने स्वाभाविक थे।

ऐसे में स्थानीय ठिकानेदारों द्वारा राजपूती मूल्यों की दुहाई देना, स्मरण कराना, उनकी हैसियत को बचाने का एक सांस्कृतिक प्रतिरोध 17वीं शताब्दी में भारी तनाव, टकराव, अर्न्तविरोधों से भरी थी जिससे उतार–चढ़ाव के कई दौर थे परन्तु ये परिवर्तन, अर्न्तविरोध उनका प्रतिरोध तथा प्रतिक्रिया नई राज्य व्यवस्था का राजपूती ढांचे में घूसपैठ करने का प्रयास था, इसी परिवर्तन से राजपूतों के अपने वंशीय उत्तरदायित्व, अधिकारों में फेरबदल होना स्वाभाविक था तथा परंपरागत पहचान के मूल्यों से स्थिरता का संकट पैदा होना हर स्तर पर उभरकर आने लगा था। इस प्रतिरोध के लिए ही राजपूती धर्म व मूल्यों की दुहाई ख्यातों में मिलने लगती है, अतः यह एक वैचारिकता में बदलावों का सूचक भी था। वैचारिकता के स्तर पर नये–नये मिथक कथाओं तथा ऐतिहासिक बातों को समर्थन जुड़ाने के लिए पुनः जोर सहित प्रस्तुत किया जाना एक स्वाभाविक कार्य था।

राव बीदा द्वारा जांगल प्रदेश में मोहिला राजपूतों को पट्टे प्रदान किये गये थे परन्तु, उनके द्वारा पट्टे की शर्तों में कोताही होने पर पट्टा समाप्त कर उन्हें सेवा से मुक्त कर दिया गया।[37] पट्टे का आधार उस क्षेत्र की संपूर्ण आय का आंकलन अनिवार्य था, जबकि भाई बाट प्रणाली या भाई बाट चाकर में भू–राजस्व का आकलन केन्द्रिय स्तर पर किसी रूप में नहीं होता था। यही आकलन रैव प्रणाली के द्वारा राजपूती शासकों के क्षेत्र की राज्य द्वारा भूराजस्व वाली आमदनी के आंकड़े जुटाने से सम्भव हुआ। इसीलिए 17वीं शताब्दी के उतरार्ध में रैव आंकड़ों का दर्ज दयोरा दस्तावेज बढ़ने से लगता है।[38] ऐसी परिस्थितियों में यह राज्य के द्वारा स्थानीय स्तर पर आर्थिक साधनों पर सीधे नियंत्रण के प्रयास से स्थानीय ठिकानेदारों के आर्थिक हितों पर कटौती थी। अब स्थानीय स्तर के ठिकानेदारों में रोष स्वरूप प्रतिक्रिया एवं बढ़ते तनाव दिखाई देने लगे, जब परम्पराओं द्वारा पूर्ववर्ती शासक, स्थानीय ठिकानेदार के भाई बाट प्रणाली पर आधारित मूल्यों व संबंधों से जुड़े पुनः स्मरण की जाने लगी। इस प्रकार राजपूती राजनीति एवं समाज इन परिवर्तनों से संगठनात्मक रूप से नई राज्य व्यवस्था की ओर जाता प्रतीत होता है जिसमें रक्त संबंधों, सगे सम्बन्धी, भाईचारे, सामूहिकता, साझादारी से जुड़े संस्थागत प्रणाली को अधिक केन्द्रियकृत प्रणाली अपनाने पर जोर दिया जा रहा था।

इन परिवर्तनों से न केवल एक राजपूत की आन्तरिक ढांचे से जुड़ी निष्ठा, छवि के व्यवहार में बदलाव आ रहे थे। अपितु वंश के दायरे से बाहर व्यक्तिगत निष्ठा के नये मूल्य जुड़ रहे थे तथा राजपूती अस्मिता, राजपूती संस्कृति, राज्य व्यवस्था में विश्वास, मूल्य, रैंक, नये रूप से परिभाषित हो रही थी। ऐसी बदलाव की परिस्थितियों में राज्य तथा व्यक्तिगत स्तर पर वैधानिकरण के नये–नये साधनों की तलाश, सम्भावित रूप का सहारा लेना सामान्य प्रक्रिया थी। राजपूती धर्म को भी मोक्ष प्राप्ति का माध्यम दिखाना, राजपूती व्यवहार के अंशों को बचाव करने का प्रयास था,[39] जबकि राजपूती धर्म का निर्वाह दो विरोधाभाषी रूपों, भाईचारे का समर्थन तथा व्यक्तिगत निष्ठा में अपने स्वामी की सेवा से दिखाई देता है। इसीलिए राजपूती मूल्यों के संरक्षक चारण–भाटों की कथाओं में नये मिथकों, दोनों रूपों में पुरानी व्यवस्था समर्थन का नए संबंधों का रूप पुनः अपने साहित्य का मुख्य विषय बनाना शुरू किया।

निष्कर्षः–

राजपूती राज्य व्यवस्था के ये बदलाव वास्तव में आन्तरिक एवं बाह्य दोनों दबावों से जुड़े थे। मुख्य शासकों के मुगलों से जुड़ने से नये अवसर व अतिरिक्त साधन उपलब्ध हुये तथा उन्हें अपनी सेवा, वंश की सीमाओं से बाहर मिले, इससे राजपूती सरदारों पर निर्भरता में कमी आई तथा राजपूती कार्यप्रणाली की संस्थाओं को जानने का मौका मिला। इसके अतिरिक्त आन्तरिक ढांचे में भी अपने सत्ता, साधनों के लिए केन्द्रियकरण की ओर उनके प्रयास तेज हुये। अतः मुख्य रूप से तीन स्तर– भाई बाट प्रणाली, भाई बाट चाकर प्रणाली, एवं पट्टा दारी व्यवस्था इसके मूल थे।

संदर्भ सूची

1. कर्नल जैम्स टाड, अनाल्स एण्ड ऐन्टीक्यूटी आफ राजस्थान, भाग– 1–3, (स.) विलियम क्रूक, पुन प्रकाशित लो प्राइस पब्लिकेशन, दिल्ली, 1995।
2. कर्नल जैम्स टाड, वही।
3. गौरी शंकर ओझा, सोलंकियों का प्राचीन इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1907, सिरोही राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1911।
4. दशरत शर्मा, अर्ली चौहान डायनिस्टीज: ए स्टडी आफ चौहान पोलिटिकल्स हिस्ट्री, चौहान पोलिटिकल्स इंस्टीट्यूशन एण्ड लाइफ इन दी चौहान डोमिनियन फ्रोम 800-1316 ए. डी. एस, चान्द, दिल्ली,1959।
5. विश्वेश्वर रेऊ, मारवाड का इतिहास, भाग–1, 2, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2014।
6. जी. डी. शर्मा, राजपूत पोलिटीः ए स्टडी आफ पोलिटिकस एण्ड एडमिनिस्ट्रेसन आफ मारवाड स्टेट, 1949।
7. मैक्स हार्कोट, "दी देशनोक करणी माता टेम्पल एण्ड पोलिटिकल लेजीटीमेंसी इन मीडिवल राजस्थान", साऊथ एशिया, एडीसन, 1993, पृ. 33–48।
8. नंदिनी सिन्हा कपूर, स्टेट फॉमेसन इन राजस्थानः मेवाड ड्यूरिंग दी सेवन्थ फिफ्टींथ सेन्चूरीज, मनोहर, दिल्ली, 2002।
9. मोनिका होरस्टमैन, "दी टेम्पल ऑफ गोविन्दा देवजी ऐ सिम्बल ऑफ हिन्दू किंगशिप, में रिलिजन, रीच्यूल एण्ड रोयल्टी, (सं.) एन. के. सिन्धी एवम् राजेन्द्र जोशी रावत, दिल्ली, 1999, पृ. 119–150।
10. नार्वट पीबोडी, हिन्दू किंगशीप एण्ड पोलिटी इन प्रिकोलोनियल इण्डिया, कैम्ब्रीज, 2003।
11. परम्पराओं में राजपूतों के उभार को क्षत्रिय वंश से जोड़कर देखा जाता है तथा पौराणिक क्षत्रिय वंशावली, सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी, अग्निकुण्ड सिद्धान्तों से उद्भव बताया है जो काल्पनिक मिथक है। वास्तव में ये सिद्धान्त उद्भव को दर्शाने के स्थान पर राजपूत वंशों के मूल को छिपा, वैधानिकता देने के प्रयास अधिक थे।
12. बी.डी. चट्टोपध्याय, "दी एमेरजेंस आफ री राजपूतस एज हिस्टोरिकल प्रोसेस इन अर्ली मिडिवल राजस्थान" में दी मेकिंग अर्ली मीडिवल इण्डिया, ऑक्सफोर्ड प्रेस, दिल्ली, 2000।
13. कर्नल जेम्स टाड, पूर्वोक्त, पृ. 29।
14. नैणसी री ख्यात, पृ. 182।
15. नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ. 43, 59, 110।
16. नैणसी री ख्यात, वही, भाग 1, पृ. 121।
17. नैणसी री ख्यात, वही, पृ. 125, 133, 144, 145।

© 2018, SKIJMR All Rights Reserved

18. पाबूजी राठौर स्थानीय मूर्तियाँ जिसने गैर राजपूतों, निम्न वर्गों की रक्षार्थ, निम्नवर्गों में पूज्यनीय स्थान प्राप्त किया तथा राजपूत वर्गों द्वारा उसकी आलोचना की जाती थी। पाबूजी प्रमुख देवता के रूप में उभरे तथा 19वीं शताब्दी में राजपूतीकरण हुआ जब राजपूतों ने उन्हें अपनाया।
19. कर्नल जैम्स टॉड, पूर्वोक्त पृ. 34।
20. टाड ने राजपूती समाज, वंश की राजनीति से जुड़े मूल्यों का विशद वर्णन किया है।
21. नैणसी री ख्यात, 67।
22. नैणसी री ख्यात दृ भाग 2, पृ. 68–71।
23. जिग्लर, वही, समनोट्स आन दी राजपूत लोयल्टी पृ. 187।
24. बी. डी. चट्टोपाध्याय, पूर्वोक्त पृ. 182–186।
25. जिग्लर पूर्वोक्त पृ. 183 ।
26. नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ. 56, 57, 75।
27. नैणसी री ख्यात, भाग 2, पृ. 62–64।
28. नैणसी री ख्यात, भाग 2, पृ. 125–132।
29. जिग्लर, पूर्वोक्त पृ. 185–186।
30. जिग्लर, वही, पृ. 187–190।
31. जिग्लर, वही, पृ. 187–190।
32. जी.डी. शर्मा, राजपूत पोलिटी, पृ. 118,159।
33. नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ. 95, 193।
34. नैणसी री ख्यात, भाग 2, पृ. 257।
35. जिग्लर, पूर्वोक्त पृ. 189।
36. जी.डी. शर्मा पूर्वोक्त पृ. 18–20।
37. नैणसी री ख्यात, भाग 2, पृ. 193।
38. नैणसी री ख्यात, वही भाग 2, पृ. 193।
39. जिग्लर, पूर्वोक्त पृ. 201।

© 2018, SKIJMR All Rights Reserved